

---

## इकाई 25 दलित

---

### इकाई की रूपरेखा

- 25.0 उद्देश्य
- 25.1 प्रस्तावना
- 25.2 दलित कौन है और दलित आंदोलन क्या है?
- 25.3 भारत में दलित आंदोलन
  - 25.3.1 औपनिवेशिक काल में दलित आंदोलन
  - 25.3.2 औपनिवेशोत्तर काल में दलित आंदोलन
- 25.4 सारांश
- 25.5 शब्दावली
- 25.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें व लेख
- 25.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

### 25.0 उद्देश्य

---

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप इस योग्य होंगे कि :

- भारत में दलित आंदोलन का अर्थ समझ सकें;
- दलित आंदोलन में शामिल मुद्दे/समस्या समझ सकें;
- दलित आंदोलन के विभिन्न प्रकार जान सकें;
- उन चरणों को जान सकें जिनसे होकर दलित आंदोलन गुजर चुका है; और
- चुनावीय राजनीति में दलितों की भूमिका व उनके संगठनों का विश्लेषण कर सकें।

---

### 25.1 प्रस्तावना

---

पिछले कुछ दशकों में देश के विभिन्न हिस्सों में दलित आंदोलन की एक बाढ़-सी देखी गई। यह विभिन्न स्तरों यानी राज्य, स्थानीय व अखिल भारतीय स्तर, पर उनकी सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक गतिविधियों में प्रतिबिम्बित होती है। एक बड़ी संख्या में दलितों के सामाजिक व सांस्कृतिक संगठन, उनके राजनीतिक दल व नेता देश के विभिन्न भागों में उद्गमित हुए हैं। हालाँकि देश के अधिकतर भागों में वे स्वयं अपना हक कायम नहीं कर पाए हैं। अब भी उन क्षेत्रों में जहाँ अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हैं दलित स्वयं अपना हक कायम कर रहे हैं। वे देश की सामाजिक व राजनीतिक प्रक्रियाओं में एक निर्णायक शक्ति बन चुके हैं। समसामयिक दलित आंदोलन महिलाओं, जनजातियों, पर्यावरणविदों, कर्मियों व कृषकों जैसे अनेक अन्य सामाजिक समूहों के सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों के साथ हो रहा है।

---

### 25.2 दलित कौन है और दलित आंदोलन क्या है?

---

दलित वे जन-समूह हैं जिन्होंने अस्पृश्यता समेत सामाजिक भेदभाव को झेला है वे वृहद् रूप से हमारे समाज के आर्थिक रूप से अलाभान्वित समूहों से संबंध रखते हैं। वे हमारे संविधान में अनुसूचित

जाति श्रेणियों में रखे जाते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में 'दलितों की श्रेणी' प्रथमतः ज्योतिबा फुले द्वारा प्रयोग किया गया। लोक प्रचलित रूप से इसका प्रयोग सत्तर के दशक में दलित पंथेर द्वारा किया गया। लेकिन यह प्रचलन में अभी हाल ही में आया है – अस्सी के दशकोपरांत ही। दलित अथवा अनुसूचित जातियों हेतु प्रयुक्त 'हरिजनों' की श्रेणी का स्थान इसने ले ही लिया है। अस्सी के दशकोपरांत 'दलित' शब्द ही सामान्य व्यवहार में आया गया है। हमारे संविधान में उनके हितों के संरक्षण हेतु विशेष प्रावधान हैं – सार्वजनिक नौकरियों, छात्रवृत्तियों, विधायी निकायों, इत्यादि में आरक्षण। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार व अन्य संवैधानिक अधिकारों ने उन्हें राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने में सक्षम बना दिया है।

दलित आंदोलन जाति-आधारित भेदभाव तथा आर्थिक असमानता के मुद्दों को उठाता है। यह सामाजिक न्याय हेतु एक संघर्ष है। वे मुद्दे जिन पर दलित आंदोलन शुरू किया गया है, हैं : आत्म-सम्मान, महिलाओं का उत्पीड़न, वेतनों का भुगतान, बलात् श्रम अथवा बेगार, भूमि-विवाद, आरक्षण नीति का कार्यान्वयन, नौकरी में पदोन्नति, मतदान करने जैसे लोकतांत्रिक अधिकारों से इंकार, डॉ० भीमराव अम्बेडकर। उनकी प्रतिमा का अनादर, आदि। दलितजन इन मुद्दों पर विरोध-प्रदर्शन व आंदोलन विभिन्न तरीकों से करते हैं, जिनमें शामिल हैं – मुख्यतः अनौपचारिक तरीके, व्यक्तिगत, आधार पर, संगठित तरीकों, सत्याग्रह व मुकदमे के माध्यम से, इन्हें या तो संसद में अथवा विधान सभाओं में उठाकर। दलित आंदोलन/ हलचल को प्रदर्शन, रैलियों, जुलूस जैसे सामूहिक कृत्य के माध्यम से; हस्ताक्षर अभियान, विरोधस्वरूप मुद्रित-सामग्री, इत्यादि के माध्यम से भी व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी उनका आंदोलन दलितों, पुलिस व समाज के उन तत्त्वों के बीच संघर्ष में परिणत होता है जो दलितों के हितों के प्रति विद्वेष रखते हैं।

## बोध प्रश्न 1

नोट :i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) 'दलित' शब्द से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) दलित आंदोलन द्वारा उठाए गए मुख्य मुद्दे क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

## 25.3 भारत में दलित आंदोलन

भारत में दलित आंदोलन विभिन्न स्तरों पर हो रहा है जैसे कि ग्रामों व कस्बों, राज्य व अखिल भारतीय (राष्ट्रीय) स्तर पर। यह उन क्षेत्रों में हो रहा है जहाँ दलित जन हलचल मचाने की स्थिति में हैं, क्योंकि देश के अनेक भागों में अब भी वे अपनी आवाज़ उठाने के काबिल नहीं हैं। इसी कारण, देश में दलित आंदोलन में कुछ प्रवृत्तियाँ उन्हीं क्षेत्रों से पहचानी जा सकती हैं जहाँ यह हो रहा है। भारत में दलित आंदोलन को दो कालों में बाँटा जा सकता है : स्वतंत्रतापूर्व काल और स्वतंत्रोत्तर काल।

### 25.3.1 औपनिवेशिक काल में दलित आंदोलन

स्वतंत्रतापूर्व काल में, भारत में दोनों स्तरों पर दलित आंदोलन हुए – राष्ट्रीय तथा प्रांतीय। राष्ट्रीय स्तर पर मोहनदास गाँधी व डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर ने दलितों की समस्याओं को उठाया। लेकिन अम्बेडकर व गाँधीजी ने उन्हें सुलझाने के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग अपनाए। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दूवाद का एक विकृत रूप पाया, और सुझाव दिया कि इसका समाधान हिन्दुओं के नैतिक सुधार द्वारा किया जा सकता है। उन्होंने 'हरिजन' शब्द यही कहने के उद्देश्य से गढ़ा कि दलित अथवा अछूत भी उच्च जाति के लोगों जैसे ही 'ईश्वर की प्रजा' हैं। दूसरी ओर, अम्बेडकर ने अस्पृश्यता का वास्तविक कारण हिन्दूवाद के स्वभाव में ही देखा और सुझाव रखा कि अस्पृश्यता अथवा जाति-भेद का एकमात्र समाधान हिन्दूवाद के उन्मूलन अथवा दलितों का अन्य किसी धर्म, अधिमानतः बुद्ध-धर्म में परिवर्तित किए ही निहित है। हिन्दूवाद के सिद्धांतों पर वास्तव में प्रश्न करने अथवा धर्मांतरण की वकालत करने से पूर्व अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को हिन्दू क्षेत्र की तह से मिटा देने का प्रयास किया था। इस संबंध में उन्होंने मंदिर-प्रवेश आंदोलन शुरू किया। सबसे महत्वपूर्ण घटना, जिसने हिन्दू धर्म के विषय में अम्बेडकर का रूझान प्रबलतापूर्वक बदल दिया, थी महाराष्ट्र में 1927 का 'महाद सत्याग्रह'। इस घटना में अम्बेडकर ने उस चौदार जलाशय में प्रवेश करने के लिए बड़ी संख्या में दलितों का नेतृत्व किया, जो रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा अछूतों के लिए प्रतिबंधित था। अम्बेडकर की चेष्टा का रूढ़िवादी हिन्दुओं द्वारा विरोध किया गया, जिन्होंने फिर इस हौज़ को कर्मकाण्डता से शुद्ध किया। रूढ़िवादी हिन्दुओं की प्रतिक्रिया ने अम्बेडकर को 'मनुस्मृति' जलाने और 1935 में यह टिप्पणी करने को मजबूर कर दिया कि 'मैं पैदा हिन्दू ज़रूर हुआ हूँ लेकिन मरूँगा हिन्दू नहीं।' उन्होंने महसूस किया कि मूल समस्या हिन्दूवाद में ही निहित है और दलितों को छुआछूत की धमकी से मुक्त कराने के लिए धर्मांतरण ही एक रामबाण है। अम्बेडकर का यह दृढ़ विभाजक 1956 में उनके द्वारा एक बड़ी संख्या में अपने समर्थकों के साथ बुद्ध-धर्म अपना लेने में परिणत हुआ।

प्रांतीय स्तरों पर भी कई नेता थे जो दलितों की समस्याओं से संघर्ष में शामिल थे। भारत में विभिन्न भागों में एकल जातीय आंदोलन भी थे – दक्षिण में नाडारों, पुलयों, इज़ाहबों के आंदोलन; पश्चिम बंगाल में नामशूद्र आंदोलन; पंजाब व उत्तर प्रदेश के चमारों के बीच क्रमशः मंगूराम के नेतृत्व में 'आदि धर्म' आंदोलन तथा अछूतानंद के नेतृत्व में 'आदि हिन्दू' आंदोलन। त्रावनकोर में इज़ाहबों के बीच नारायण गुरु ने आंदोलन चलाया और केरल में पुलयों के बीच अय्याकली ने। ये आंदोलन कर्मकाण्ड में स्वयं-सुधार, उनकी शिक्षा की उन्नति, राज्य के तहत रोज़गार में प्रवेश प्राप्त करने के प्रति वचनबद्ध थे। पुलयों के दलित आंदोलन ने अपना उद्गम आर्य-पूर्व काल में खोजा और अपना देश के मूल निवासियों के रूप में वर्णन किया – हिन्दू अथवा उच्च जातियाँ बाद में आयी थीं। मंगूराम ने अछूतों के धर्म को हिन्दू धर्म से पहले का खोजकर बताया। उनके अनुसार अछूत ही भारत के मूल निवासी (आदि) थे; उनका अपना धर्म था – 'आदि धर्म' बाद के आगंतुकों द्वारा 'आदि

धर्मियों' को पुनर्जीवित स्थानों पर धकेल दिया गया। उन्होंने 'आदि धर्म' को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। तीसवें दशक के मध्य तक यह आंदोलन समाप्त हो गया। श्री नारायण गुरु (1857-1928) ने त्रावनकोर में हिन्दूवाद की एक समीक्षा विकसित की जिसका प्रभाव उनके अपने इज़ाहवा समुदाय से लेकर पुलयों, आदि से भी आगे तक पड़ा। उनका तत्त्वज्ञान था "मनुष्य के लिए एक जाति, एक धर्म तथा एक ईश्वर"। अय्याकली (1863-1941) के उद्गमन के साथ ही पुलय भी प्रभावी हो गए। हैदराबाद राजसी राज्य में, पी.आर. वैकटस्वामी ने अछूतों को उद्यत करने का प्रयास किया। उनके आह्वान के मुख्य मुद्दे थे – स्वयं-सुधार, शिक्षा व समानता। बीसवें व तीसवें दशक के दौरान दक्षिण व पश्चिम में हो रहे दलित आंदोलन ने भी मंदिरों में प्रवेश की अनुमति पर ध्यान केन्द्रित किया।

प्रांतीय स्तर के दलित नेतृत्व ने उत्तर भारत के उन समाज-सुधार आंदोलनों का भी प्रत्युत्तर दिया जो बीसवीं सदी के पूर्व-दशकों में हुए, जैसे आर्य समाज। लेकिन इन आंदोलनों के नेतृत्व को उच्च जातियों से संबद्ध, बहुत अधिक सरपरस्त व समानता के उनके द्योतन को बहुत संकीर्ण पाकर, उन्होंने इन आंदोलनों का संग छोड़ दिया। इसके बाद, शुरू हुई उनकी स्वतंत्र कार्य-प्रक्रिया। यह घटना उत्तर प्रदेश व पंजाब में हुई। इसी प्रकार, मद्रास में एम.सी. राजा ने पाया कि गैर-ब्राह्मण न्याय पार्टी अछूतों के हितों के प्रति विद्वेष रखती है।

इनसे कहीं दूर, मध्य प्रदेश (छत्तीस गढ़) के दलित, खासकर चमार, गुरु घासीदास के नेतृत्व की विरासत द्वारा प्रेरित 'सतनामी आंदोलन' से 18वीं शताब्दी से ही प्रभावित थे। सतनामियों ने सामाजिक व औपचारिक पुरोहिततंत्र के द्योतन पर एक ही साथ दो तरीकों से आपत्ति की : हिन्दू देवी-देवताओं को नकार कर और मंदिर के भीतर 'पूजा' व 'पुराहित' को अस्वीकार करके। यह 'भक्ति परंपरा' की दिशा में था।

अम्बेडकर के पदार्पण करने और उनका अछूतों के लिए अलग निर्वाचक वर्ग के मुद्दे पर गाँधीजी से विवाद होने के साथ ही, अम्बेडकर भारत में अछूतों के राष्ट्रीय स्तर की राजनीति में आ गए। तीसवें दशक से ही अम्बेडकर ने मंदिर-प्रवेश मुद्दे को लेकर आंदोलन शुरू कर दिया था।

बीसवीं सदी के आरंभ के वर्षों में कांग्रेस व अम्बेडकर के बीच मतभेद का एक बड़ा क्षेत्र उस मुद्दे के विषय में था जिसे कांग्रेस के कार्यक्रमों में अन्यों से ऊपर रखा गया था। अम्बेडकर का मानना था कि कांग्रेस को सामाजिक मुद्दे राजनीतिक मुद्दों से ऊपर रखने चाहिए। उन्होंने महसूस किया कि राजनीतिक अधिकारों का उपयोग सामाजिक समानता लाए बगैर नहीं किया जा सकता है। कांग्रेस दूसरी और यह मानती थी कि एक बार लोगों को राजनीतिक अधिकार देकर ही सामाजिक समानता स्थापित की जा सकती है।

आने वाले काल में दलित राजनीति अम्बेडकर व गाँधीजी के बीच विवाद द्वारा ही निर्देशित हुई। वह अवसर जब अम्बेडकर और गाँधीजी के बीच मतभेद सामने आए, था – 1930-31 का गोल-मेज सम्मेलन। तब तक मंदिर या हौज़ प्रवेश आंदोलन की व्यर्थता को समझकर, अम्बेडकर ने विभिन्न सार्वजनिक निकायों में एक पृथक् व अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में दलितों को प्रतिनिधित्व दिए जाने की आवश्यकता पर ध्यान केन्द्रित किया।

लंदन में 1931 के द्वितीय गोल-मेज सम्मेलन में निर्वाचक-वर्गों के स्वभाव पर अपने मतभेदों के मद्देनजर अम्बेडकर राष्ट्रीय उत्कर्ष की खोज में लग गए; यह सम्मेलन सायमन आयोग की उस रिपोर्ट पर चर्चा के लिए आयोजित हुआ था जिसमें पद-दलित वर्गों के लिए संयुक्त निर्वाचक-वर्ग तथा आरक्षण का सुझाव दिया गया था। अम्बेडकर इस सम्मेलन में आमंत्रित दो पद-दलित वर्गों के

प्रतिनिधियों में से एक थे। अम्बेडकर ने पद-दलित वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचक-वर्ग की माँग की। अम्बेडकर की माँग को पद-दलित वर्गों के एक अन्य प्रतिनिधि का समर्थन मिला – मद्रास के एम. सी. राजा से। लेकिन गाँधीजी ने पद-दलित वर्गों के लिए पृथक् निर्वाचक-वर्ग हेतु अम्बेडकर के प्रस्ताव का विरोध किया। राजा ने पैतरा बदला और संयुक्त निर्वाचक-वर्ग के समर्थन में हिन्दू महासभा के प्रधान, मुन्ने के साथ एक समझौता कर लिया। राजा-मुन्ने करार ने अछूतों के नेतृत्व को विभाजित कर दिया। अम्बेडकर की महाराष्ट्र से माहर नेताओं, पंजाब से 'आदि धर्म मंडलों' और बंगाली 'नामशूद्रों' के अंगों में से एक द्वारा समर्थन दिया गया। राजा के समर्थकों में महाराष्ट्र से प्रमुख 'चैम्बर' नेता शामिल थे। गाँधीजी, दूसरी ओर, ब्रिटिशों के उस सम्प्रदाय पुरस्कार (कम्पूनल अवार्ड) के खिलाफ 20 सितम्बर, 1932 को आमरण अनशन पर बैठ गए, जो पृथक् निर्वाचक-वर्ग की वकालत करता था। गाँधीजी के अनशन के चलते स्थिति को बिगड़ने से बचाने के लिए, अम्बेडकर नरम पड़ गए और गाँधीजी के साथ एक करार कर लिया जिसे 'पूना पैक्ट' के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार, पृथक् निर्वाचक-वर्ग हटा दिया गया और इसके बदले अछूत जातियों के लिए विधायी निकायों में आरक्षण पुरस्थापित किया गया। पूना संधि की सिफारिशें भारत सरकार अधिनियम, 1935 में सम्मिलित कर ली गईं। परिणामस्वरूप 1937 के चुनावों के दौरान विधानसभाओं में आरक्षण हुआ। अम्बेडकर की पार्टी स्वतंत्र श्रमिक पार्टी (आई.एल.पी.) ने इस चुनाव को लड़ा। आपने आई.एल.पी. को बाद में अनुसूचित जाति महासंघ (एस.सी.एफ.) में बदल दिया। तदोपरांत, राजा अम्बेडकर के समर्थक बन गए। उनकी मृत्यु के बाद, अम्बेडकर के समर्थकों ने भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (आर.पी.आई.) बना ली। दूसरी ओर, कांग्रेस व गाँधी जी अछूतों के प्रति प्रोत्साहन प्रदान कर रहे थे; जगजीवन राम ऐसी ही सरपरस्ती से उभरे।

## बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) औपनिवेशिक काल के दौरान प्रांतीय स्तर पर हुए दलित आंदोलनों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) डॉ. भीमराव अम्बेडकर व मोहनदास गाँधी के बीच संबंधों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

## 25.3.2 औपनिवेशोत्तर काल में दलित आंदोलन

भारत में स्वतंत्रोत्तर काल में दलित आंदोलन को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है, यानी, प्रथम चरण (पचास से साठ का दशक); द्वितीय चरण (सत्तर से अस्सी का दशक); और तृतीय चरण (नब्बे के दशक से आगे)। सम्पूर्ण स्वतंत्रोत्तर काल में दलित राजनीति का एक सामान्य अभिलक्षण रहा है, खासकर साठ के दशक के बाद, यानी, अपनी स्वयं की पार्टी अथवा दलितों के नेतृत्व वाली एक पार्टी बनाने हेतु संघर्ष। साठ के दशक में कांग्रेस से आर.पी.आई. को, 1977 में जनता पार्टी को, 1989 में जनता दल को और नब्बे के दशक व बाद में बी.एस.पी. (बहुजन समाज पार्टी) को दलित समर्थन का स्थानांतरण, आदि दलितों की इसी इच्छा के उदाहरण हैं। दलित आंदोलन के उदय में अनेक कारकों का योगदान है, खासकर अस्सी के दशक से आगे। इनमें दलितों के बीच उस नई पीढ़ी का उद्गमन शामिल है जो अपने अधिकारों, जनसंपर्क साधनों के विस्फोट व डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के विचारों के प्रभाव के प्रति सचेत है।

### प्रथम चरण ('50 से '60 का दशक)

सार्वभौमिक, वयस्क मताधिकार, संविधान के प्रावधानों के अनुसार अनुसूचित जातियों के लिए शैक्षिक व राजनीतिक संस्थाओं व नौकरियों में उनकी काफी बड़ी संख्या को आरक्षण ने स्वतंत्रोत्तर काल में इन सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए राह आसान कर दी। इनके साथ ही भारत में राज्य ने समाज के अलाभान्वित समूहों की बेहतरी के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए, खासकर अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के लिए। यद्यपि देश के अधिकांश भागों में अनुसूचित जातियाँ अनेक व्यावहारिक कारणों से राज्य द्वारा उठाए गए कदमों से लाभान्वित नहीं हो सकी, तथापि इन्होंने जहाँ भी उनके लिए उपयुक्त स्थितियाँ थीं, मदद की। इसके अलावा, राजनीतिक दलों, खासकर कांग्रेस पार्टी ने, उन्हें अपने वोट-बैंक के रूप में संघटित की कोशिश की। देश के अनेक भागों में वोट देने के अपने अधिकार का लाभ उठाने में मुश्किलों के बावजूद, दलितों का राजनीतिकरण एक बड़े पैमाने पर हुआ। इस प्रकार की प्रक्रिया ने उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सचेत कर दिया। कांग्रेस की नीतियों व रणनीतियों ने उसको अपना एक ऐसा सामाजिक आधार बनाने में मदद की जिसमें दलित मुख्य सामाजिक समूह के रूप में थे। इस चरण में दलितों का राजनीतिकरण राजनीतिक दलों, खासकर कांग्रेस, के सामाजिक आधार के एक संघटक के रूप में हुआ। इसी बीच, स्वतंत्रता के उपरांत जन्मी दलित नेतृत्व की प्रथम पीढ़ी उद्गमित हुई, जिसमें शिक्षित मध्यवर्ग व्यवसायी भी समान रूप से शामिल थे।

यह समूह प्रबल राजनीतिक दलों व सांस्कृतिक लोकाचार, खासकर, कांग्रेस व हिन्दू आस्था प्रणाली, का आलोचक हो गया। उन्होंने यह महसूस करना शुरू कर दिया कि कांग्रेस उनका वोट-बैंक के रूप में इस्तेमाल कर रही है; उच्च जातियाँ इस दल के नेतृत्व पर कब्जा किए हैं और दलितों को नेतृत्व नहीं करने दे रही हैं। सांस्कृतिक मोर्चे पर उनको लगा कि हिन्दू धर्म उन्हें कोई आदरपूर्ण स्थान नहीं देता है। इसीलिए, सम्मानजनक रूप से जीने के लिए उन्हें हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध-धर्म अपना लेना चाहिए। इस मत के पक्षधर डॉ॰ भीमराव अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने अम्बेडकर के विचारों व सिद्धांतों पर आधारित भारतीय रिपब्लिकन पार्टी (आर.पी.आई.) बनाई। पचास व साठ के दशकांत में आर.पी.आई. ने प्रबल संघटकों से राजनीतिक व सांस्कृतिक स्वायत्तता प्राप्त हेतु उत्तरप्रदेश व महाराष्ट्र में एक सांस्कृतिक व राजनीतिक आंदोलन शुरू किया। एक बड़ी संख्या में दलित धर्मांतरण कर बौद्ध हो गए। यह आर.पी.आई. साठ के दशक में हुए विधानसभा व संसदीय चुनावों में एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक पार्टी बनकर उभरी। लेकिन साठ के दशकोपरांत आई.पी.आई. उत्तरप्रदेश में सबल नहीं रही क्योंकि इसका मुख्य नेतृत्व उसी कांग्रेस पार्टी में सहयोजित हो गया जिसके खिलाफ इसने पूर्व-दशक में आंदोलन शुरू किया था।

## द्वितीय चरण ('70 से '80 का दशक)

यह चरण वर्ग व जाति संघर्षों के संयोग द्वारा अभिलक्षित हुआ। पश्चिम बंगाल बिहार व आंध्रप्रदेश के ग्रामीण इलाकों में, नक्सलवादी आंदोलन ने जाति व वर्ग शोषण के खिलाफ एक जंग शुरू की। बम्बई व पूना शहरों में, 'दलित पंथेर' ने इसी प्रकार का आंदोलन चलाया।

### दलित पंथेर आंदोलन

सन् 1972 में, महाराष्ट्र के दो मुख्य शहरों में, दलितों के एक शिक्षित समूह – युवा दलित लेखकों व कवियों ने 'दलित पंथेर' नामक एक संगठन बनाया। अम्बेडकरवाद, मार्क्सवाद व "नीग्रो साहित्य" से प्रभावित इन लोगों ने उस जाति-व्यवस्था के बहिष्कार को लक्ष्य बनाया जो उनके अनुसार ब्राह्मणवादी हिन्दूवाद पर आधारित थी। सार्वजनिक स्थल, यानी, कार्यालय, घरों, चाय की दुकानों, सार्वजनिक पुस्तकालयों में चर्चाओं व वाद-विवादों के मार्फत जन-संपर्क व संचार नेटवर्क के माध्यम से, दलित लेखकों व कवियों ने हिन्दू जाति-व्यवस्था व शोषक आर्थिक व्यवस्था की समालोचना प्रस्तुत की।

'दलित पंथेर' के मूल को उस विवाद में खोजा जा सकता है जो एक सामाजिक पत्रिका 'साधना' में दलित लेखकों द्वारा लिखे गए लेखों व कविताओं के इर्द-गिर्द केन्द्रित था। इन लेखों में सार्वजनिक विवादास्पद था राजा धाले का लेख। यह विवाद दो बिन्दुओं के आस-पास केन्द्रित था; एक, दलित महिला के अपमान पर पचास रुपये के जुर्माने की तुलना सौ रुपये में करना, जो राष्ट्रीय झण्डे के अपमान पर जुर्माना होता है। दूसरा, बिन्दु था उन बातों का दोहराया जाना, जो एक अन्य विख्यात दलित-मार्क्सवादी लेखक, नामदेव धासल के कविता-संग्रह – गोलपिता, के प्रकाशन समारोह में पहले हो चुकी थीं। 'गोलपिता' की कविताएँ महिलाओं के शोषण से भी संबंधित थीं।

उच्च जाति के मध्यवर्ग ने उन लेखों द्वारा घोर अपमान महसूस किया और 'साधना' के उस अंक पर प्रतिबंध लगाने की माँग की जिसमें राजा धाले कृत लेख थे। प्रतिक्रियास्वरूप, दलित युवाओं ने हाथों में लाल-व-काला पंथेर ध्वज लेकर एक रक्षा-मार्च भी आयोजित किया। पारम्परिक संगठनात्मक नामकरण को छोड़ने के लिहाज से, उन्होंने अपने संगठन को नया नाम दिया – दलित पंथेर। 'दलित पंथेर' के कार्यकर्ता प्रथम-सीढ़ी के शिक्षित युवा थे, जिसके माता-पिता वे गरीब किसान व श्रमिक थे जिनको अम्बेडकर आंदोलन की बपौती विरासत में मिली थी।

प्रारंभिक रूप से इस आंदोलन ने शोषित लोगों – दलितों, पिछड़े वर्गों, कामगारों व किसानों, का एक गठजोड़ बनाने की उद्घोषणा की। इसका कार्यक्रम महिलाओं की समस्याओं, शुद्धता व प्रदूषण के ब्राह्मणवादी सिद्धांतों का परित्याग, तथा सभी प्रकार के राजनीतिक व आर्थिक शोषणों के खिलाफ जंग के इर्द-गिर्द केन्द्रित था। अम्बेडकरवाद की परम्परा में, उनका लक्ष्य था राजनीतिक सत्ता हासिल करना। यह आंदोलन सत्तर के दशक के इस रिपब्लिकन आंदोलन की असफलता को देखते हुए जन्मा जिसने अपने नेतृत्व के व्यक्तित्व मतभेदों की वजह से हानि उठाई थी। अपने मुख्य नेतृत्व द्वारा कांग्रेस अथवा किसी अन्य संगठन में शामिल हो जाने के साथ ही, आर.पी.आई. आंदोलन एक महत्त्वहीन प्रायः शक्ति बन चुका था। लेकिन इस आंदोलन द्वारा बोए गए बीज दलित पंथेर व उसके आंदोलन के संघटन में फलीभूत हुए। परन्तु आर.पी.आई. आंदोलन की भाँति, इसको भी विच्छेद का कष्ट भोगना पड़ा। दलित पंथेर के दो नेताओं, राजा धाले और नामदेव धासल ने वैचारिक आधार पर मतभेद बढ़ा लिए। पहले एक उत्साही अम्बेडकरवादी रहे व्यक्ति ने नामदेव धासल, एक मार्क्सवादी, पर जाति-समस्या की अनदेखी करने और दलित पंथेर आंदोलन में कम्युनिस्टों की घुसपैठ में मदद करने का आरोप लगाया। यह अन्ततः 1974 में दलित पंथेर से धासल के निष्कासन में परिणत हुआ। राजा धासल ने दलित पंथेर का एक पृथक् गुट बना लिया।

1976 में, अरुण काम्बले और रामदास अथावले के नेतृत्व वाले धाले गुट के युवा सदस्यों ने, इसको एक अखिल भारतीय रूप देने के प्रयास में, एक नया संगठित 'भारतीय दलित पंथेर' बना लिया। इसने शिक्षा-प्रणाली, बौद्ध-धर्मान्तरितों को सुविधाएँ, औरंगाबाद-स्थित 'मराठवाड़ा विश्वविद्यालय' का पुनर्नामकरण 'अम्बेडकर विश्वविद्यालय' किए जाते, तथा "प्राथमिक उद्योगों का राष्ट्रीयकरण" से संबंधित मुद्दे उठाए। परन्तु यह भी कोई छाप नहीं छोड़ सका।

दलित पंथेर सभी शोषितों का गठजोड़ करने में सफल नहीं हो सका। यह अम्बेडकरवादियों और मार्क्सवादियों में बँट गया, विशेषतः बम्बई संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र के 1974 के उप-चुनाव के बाद।

## बिहार में नक्सलवादी आंदोलन

पश्चिमी उत्तरप्रदेश अथवा महाराष्ट्र के दलितों से भिन्न, बिहार के दलितों ने औपनिवेशिक काल में जाति-विरोधी आंदोलन का अनुभव नहीं किया। जबकि गैर-दलित कृषि-वर्ग बिहार में विभिन्न कृषक अथवा जाति-संगठनों द्वारा संचालित किया जा रहा था, दलितजन ही बृहद्तः राजनीतिक दलों के वोट-बैंक रहे। जगजीवन राम ने सिवाय उनके वोट हासिल करने के, उनको संचालित करने का कोई प्रयास नहीं किया। यह केवल साठ के दशक से ही था कि केन्द्रीय बिहार के दलितों ने राजनीतिक आंदोलन में भाग लेना शुरू किया। परन्तु यह केवल भारतीय आधार पर नहीं था; यह जाति और वर्ग शोषण के घालमेल पर था। भू-स्वामियों ने अपने वर्गगत हितों के रक्षार्थ अपनी जाति सेवाएँ (निजी फौजे) तैयार कर लीं। दलितजन यहाँ जाति और वर्ग के आधार पर संगठित हो गए। जगदीश महतो नामक एक कोयरी, पिछड़े वर्ग का, नेता था जिसने आरा जिले के दलितों को लामबन्द करने का पहली बार प्रयास किया। मार्क्सवाद और अम्बेडकरवाद के दोहरे विचारों से प्रभावित हो, उसने आरा जिले में "हरिजनिस्तान" (दलित देश) पुकारा जाने वाला पत्र शुरू किया। वह उन हिंसात्मक तरीकों में विश्वास रखता था जिनमें शामिल था दलितों के हितार्थ लड़ाई में भू-स्वामियों की हत्या। उसने भूमिहीन कामगारों हेतु कम मजदूरी, दलित महिलाओं की इज्जत की रक्षा और सामाजिक सम्मान आदि मुद्दे उठाए। 1971 में उसकी हत्या कर दी गई।

दलितों पर "भूमि सेना" (कुर्मियों की), "लोरिक सेना" (राजदूतों की) आदि भू-स्वामियों की निजी सेनाओं द्वारा हमलों की गाज गिरते ही अस्सी के दशक में फिर से बिहार में दलित लामबंदी को गति मिल गई। इसके श्रमिकों ने "लाल सेना" बनाई। चूँकि भू-स्वामियों की सेना के अधिकतर शिकारों प्रत्येकसितमें शामिल if, वे नक्सलवाद-समर्थकों का भी एक बड़ा भाग 41 इन नक्सलवादियों ने मध्यम जाति व मध्यम कृषकों को संगठित करने का प्रयास किया। उन्होंने पटना व जेहानाबाद जिलों में "लिबरेशन", "पार्टी यूनिटी" जैसे संगठन बना लिए। पार्टी यूनिटी ने पूर्व-समाजवादी डॉ० विनायन के साथ मिलकर मजदूर किसान संग्राम समिति (मकिसंस) नामक एक जन-संगठन तैयार कर लिया। 'मकिसंस' ने एक अन्य संगठन (बिहार प्रदेश किसान सभा - बिप्रकिस) जो उसी समय बनाया गया था, के साथ मिलकर 1981 में प्रदर्शन आयोजित किए। इन दोनों संगठनों ने भूमिगत सेनाएँ बनाई और भू-स्वामियों के गिरोहों से लोहा लिया। वे आपस में भी लड़ मरे। 1983 में, लिबरेशन गुट ने एक अन्य जन-मोर्चा बनाया - इण्डियन पीपल्स फ्रंट (आई. पी.एफ.)। आई.पी.एफ. ने 1985 का चुनाव लड़ा। इसने नक्सलवादी गुटों के परिप्रेक्ष्य में एक परिवर्तन दर्शाया, जो "किसान आंदोलन" पर जोर देने से बदलकर "राज्य सत्ता हथियाना" हो गया था।

## कर्नाटक में दलित आंदोलन

कर्नाटक में भी दलितजन 'दलित संघर्ष समिति' (दसंस) में संगठित हुए। यह एक ऐसा संगठन था जो 1973 में बना और उसने अपनी इकाइयाँ कर्नाटक के अधिकांश जिलों में स्थापित कर लीं।



विद्वार की भाँति इसने भी जाति व वर्ग आधारित मुद्दे लिए और शोषित वर्गों के भिन्न-भिन्न गटों का एक गठजोड़ बनाने का प्रयास किया। यह विभिन्न धारणाओं वाले दलितों – मार्क्सवादी, समाजवादी, अम्बेडकरवादी, इत्यादि, को भी एक ही संगठन के झण्डे तले ले आया। 1974 व 1984 के दौरान इसने कृषि-श्रमिकों के पारिश्रमिक, देवदासी व आरक्षण से संबंधित मुद्दे भी उठाए। इसने दलितों की समस्याओं पर विचार-विमर्श के लिए अध्ययन-समूह भी बनाए। 'दसस' एक दलित नेता बासवलिंगप्पा के त्यागपत्र के बाद बनाया गया था, उक्त नेता को ऐसा करने हेतु मुख्यमंत्री देवराज अर्स ने निर्देश दिया था। इस नेता ने उच्च जाति के साहित्य को 'भूसा' (मवेशी-चारा) बताया था। इससे उच्च जातियों के छात्र नाराज़ हो गए, और फिर उच्च जातियों व दलितों के बीच दंगे भड़क उठे। उक्त मंत्री की टिप्पणी के दुष्परिणामों की भनक लगते ही मुख्यमंत्री ने उसका इस्तीफा माँग लिया था। इस 'भूसा' विवाद ने एक सशक्त जाति-विरोधी प्रवृत्ति को जन्म दिया, जिसका प्रतिनिधित्व किया एक पत्रकार राजशेखर द्वारा चलाए जा रहे समाचार-पत्र 'दलित वॉइस' ने। 'दलित वॉइस' ने ब्राह्मणों पर "नाज़ियों" की तरह और वामपंथी आंदोलन पर "ब्रह्म-कम्युनिस्ट" की भाँति प्रहार किया और दलितों को "जन्मजात मार्क्सवादी" नाम दिया। 'दलित वॉइस' के सम्पादक के अनुसार दलित-अ.पि.व. (अन्य पिछड़े **mi**) की लामबन्दी में मुख्य मुद्दा दलितों व अन्य पिछड़े वर्गों के बीच गठजोड़ नहीं है, बल्कि अन्य पिछड़े वर्गों पर दलितों का नेतृत्व है।

### तृतीय चरण (नब्बे के दशक से आगे)

नब्बे के दशक ने देश के विभिन्न राज्यों में दलित संगठनों का प्रचुरोद्भव देखा है। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (बसपा) का विषय महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि आर.पी.आई. पचास के दशक से ही महाराष्ट्र की भाँति उत्तर प्रदेश में प्रभावी रही थी, 'बसपा' का उदय भारत में दलित पहचान व राजनीति का सर्वाधिक प्रभावी अभिलक्षण रहा। मुख्यमंत्री के रूप में एक दलित महिला, मायावती, के साथ उत्तर प्रदेश में तीन बार सरकार का नेतृत्व करने में यह सफल रही है। 'बसपा' की स्थापना इसके अध्यक्ष काशीराम द्वारा 14 अप्रैल, 1984 को की गई। 'बसपा' बनाने से पहले काशीराम ने दलितों को दो संगठनों, यानी, 'बामसेफ' (अखिल भारतीय पिछड़े व अल्पसंख्यक कर्मचारी संघ) तथा डी.एस-4 (दलित शोषित समाज संघर्ष समिति) के झण्डे तले लामबन्द किया। ये दोनों दलित मध्यवर्गी की लामबन्दी पर अपना ध्यान केन्द्रित किए हुए सामाजिक व सांस्कृतिक व सांस्कृतिक संगठनों को एक राजनीतिक दल – 'बसपा' में बदल दिया। 'बसपा' ने समाज के अन्य वर्ग-बहुल, बहुजन समाज, को लामबंद करने का लक्ष्य निर्धारित किया, जिसमें आते थे – दलित जन, पिछड़े वर्ग तथा वे धार्मिक अल्पसंख्यक जो ब्राह्मण, राजपूत, बनिया, आदि उच्च जातियों से बहिष्कृत थे। 'बसपा' का मानना है कि अल्पसंख्यक उच्च जातियाँ बहुसंख्यक समुदायों अथवा 'बहुजन समाज' के वोटों का प्रयोग करती रही हैं। उन्होंने इन्हें कभी नेता अथवा शासक नहीं बनने दिया। चुनावों के लोकोत्तर में बहुमत को ही शासन करना चाहिए, 'बहुजन समाज' को शासक वर्ग बन जाना चाहिए। देश में सत्ता-खेल पैटर्न को बदल डालने की आवश्यकता है, 'बहुजन समाज' द्वारा अल्पसंख्यक उच्च जातियों को उन्हें वोट-बैंक के रूप में इस्तेमाल करने की अब और अधिक इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए। इसकी बजाय 'बहुजन समाज' ही शासक हों। इसी परिप्रेक्ष्य में 'बसपा' ने 1985 से आगे देश में अनेक राज्यों में विधानसभा व संसदीय चुनाव लड़े। 'बसपा' ने उत्तर भारतीय राज्यों में अपनी उपस्थिति का अहसास करा दिया, खासकर पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान व मध्य प्रदेश में।

'बसपा' मुख्यतः अपनी चुनावी गठजोड़ों व आम नीतियों की रणनीति के लिए दलितों के बीच अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में सफल रही है। 'बसपा' के चुनावी गठजोड़ का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण उत्तर प्रदेश राज्य में रहा है, तथापि इसने अन्य राज्यों में भी चुनावी गठजोड़ों का प्रयास किया है।

उत्तर प्रदेश के '93 के विधान सभा चुनावों के बाद से, 'बसपा' अनेक बड़े राजनीतिक निरूपणों के साथ गठबंधन कर चुकी है; जैसे उत्तर प्रदेश में कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी व समाजवादी पार्टी से अथवा पंजाब में अकाली दल व कांग्रेस से, जो उसे विधान सभा व संसदीय चुनाव जीतने में अथवा चुनावोपरांत गठजोड़ में मदद कर सकते थे, जो सरकार बनाने में इसकी मदद करता। पहला गठबंधन जो 'बसपा' ने बनाया, '93 के चुनावों में उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली 'समाजवादी पार्टी' के साथ था। तब यह गठबंधन 'बहुजन समाज' की एकता के उदाहरण के रूप में देखा गया – 'बसपा' ने दलितों के साथ और समाजवादी पार्टी ने पिछड़े वर्गों व अल्पसंख्यकों के साथ पहचान बनाई। यह गठबंधन, बहरहाल, तभी तक चला जब तक 1995 में मुलायम सिंह यादव के नेतृत्व वाली 'सपा-बसपा' सरकार से 'बसपा' ने समर्थन वापस नहीं ले लिया। मुलायम सिंह के नेतृत्व वाली सरकार के पतन के बाद 'बसपा' का 'भाजपा' से गठबंधन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप ही मायावती किसी राज्य की प्रथम दलित महिला के रूप में मुख्यमंत्री हो सकीं। मुख्यमंत्री बनने के तुरंत बाद ही, मायावती घोषणा की कि उनकी पार्टी 'सर्व समाज' की सेवा करेगी; यह उनकी पूर्व-स्थिति से पालयन था जहाँ उन्होंने 'बहुजन समाज' हेतु लड़ने की शपथ ली थी। यह 'बसपा' की चुनावी अथवा गठबंधन रणनीति में बदलाव की शुरुआत थी। आगामी चुनावों में, मूल सिद्धांतों के विपरीत, पार्टी ने न सिर्फ उच्च जातियों – ब्राह्मण, राजपूत, बनिया व कायस्थ – को टिकट दिए, बल्कि मायावती-सरकार में मंत्रियों के रूप में उनको प्रतिनिधित्व भी दिया।

तथापि, अपने मुख्यमंत्रीकाल में, मायावती ने दलितों के लिए विशेष नीतियाँ आरंभ कीं। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं : ऐसे गाँव जो पर्याप्त दलित जनसंख्या के आधार पर 'अम्बेडकर ग्रामों' के रूप में पहचाने जाते हैं, में कमज़ोर वर्गों के कल्याण हेतु विशेष कार्यक्रमों वाले 'अम्बेडकर ग्राम कार्यक्रम', तथा सार्वजनिक संस्थानों का नामकरण निम्नजाति के ऐतिहासिक महापुरुष के नाम पर करना। इसने उनके लोगों के खिलाफ द्रुत कार्यवाही की जो दलितों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण गतिविधियों में शामिल थे। 'बसपा' के उद्भव ने देश में दलितों के बीच गौरव और आत्मविश्वास का भाव जगाया है।

उत्तरप्रदेश में 'बसपा' के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकारों द्वारा अपनी नीतियों में दलितों पर विशेष ध्यान दिए जाने के फलस्वरूप गैर-दलितों – उच्च जातियों के साथ-साथ पिछड़े वर्गों – के बीच असंतोष उभरा। 'बसपा' अपनी गठबंधन रणनीति में बदलाव के द्वारा इसका सामना करने में भी सफल रही है। अपनी प्रारंभिक रणनीति से भिन्न, 'बसपा' उच्च जातियों को भी टिकट देती रही है। वास्तव में, उत्तरप्रदेश विधानसभा चुनाव हेतु 2002 में कराए गए चुनावों में, उत्तरप्रदेश विधानसभा चुनाव में विधायकों का सबसे बड़ा समूह उच्च जातियों से संबंध रखता है। चुनाव जीतने की उम्मीदवारों की योग्यता ही गठजोड़ बनाने के लिए मुख्य मापदण्ड नज़र आती है, जिसको दलितों व उच्च जातियों के उन उम्मीदवारों के गठजोड़ द्वारा संभव किया जा सकता है जिनको 'बसपा' द्वारा टिकट दिए जाते हैं।

यद्यपि 'बसपा' ने दलितों के राजनीतिकरण में काफी हद तक योगदान दिया, यह 'बहुजन समाज' की एकता को कायम नहीं रख सकी। इसकी सफलता का मुख्य कारण 'बसपा' की चुनावी रणनीति में ही निहित है।

### बोध प्रश्न 3

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) पचास व साठ के दशक के दौरान भारत में दलित आंदोलन के मौलिक अभिलक्षण क्या थे?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) दलित पथेर के उदय के लिए जिम्मेदार कारकों पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) नब्बे के दशक के दौरान दलित आंदोलन के मौलिक अभिलक्षणों का वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 25.4 सारांश

---

वे सामाजिक समूह जिन्होंने अस्पृश्यता समेत भेदभाव का सामना किया है, दलित कहलाते हैं। गत दो दशकों ने देश के विभिन्न भागों में दलित आंदोलन का उद्गमन देखा है। दलित आंदोलन पर्यावरणविदों, जनजातियों, महिलाओं तथा कृषकों व कामकारों जैसे अन्य सामाजिक समूहों के सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों का एक भाग के रूप में है। देश के विभिन्न भागों में दलितों के बहुसंख्य संगठन – सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक, उद्गमित हुए हैं। 'बसपा' ऐसे ही संगठनों का एक उदाहरण है। ये संगठन स्वायत्तशासी हैं और दलितों के मुद्दों के अनन्य रूप से उठाते हैं। दलित आन्दोलन के उद्भव हेतु कारणों में शामिल हैं – दलितों की एक ऐसी नई पीढ़ी का उदय जो अपने अधिकारों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक संगठित और सचेत हैं, जनसंपर्क माध्यमों का विस्फोट

और डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचारों व जीवन का प्रभाव। 'बसपा' ही, किसी दलित पार्टी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण है जिसने उत्तर भारत में अपने लिए एक उपयुक्त जगह तराशी है। उत्तर प्रदेश में यह तीन बार राज्य सरकार का नेतृत्व करने में सफल रही है, 'बसपा' की सफलता उसकी चुनावी रणनीति व लामबन्दी के पैटर्न पर आधारित है।

## 25.5 शब्दावली

दलित	:	वे सामाजिक समूह जो अस्पृश्यता समेत भेदभाव का सामना कर चुके हैं, दलित कहलाते हैं।
दलित आंदोलन	:	इसका अर्थ है सभी प्रकार के अपने भेदभाव के विरुद्ध और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए दलितों का विरोध-प्रदर्शन।
सामाजिक न्याय	:	इसका अर्थ है सामाजिक व आर्थिक भेदभाव का अभाव; परिस्थितियाँ जो समानता, आत्म-सम्मान व अन्य अधिकारों की रक्षा व संरक्षण हेतु हैं।

## 25.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें व लेख

ओम्वेदत, गेल, रिइनवेंटिंग रिवल्यूशन : न्यू सोशल मूवमेण्ट्स एण्ड सोशलिस्ट ट्रेडिशनस इन् इण्डिया, एम.ई.शार्पे, इंग्लैंड, 1993.

दुबे, सौरभ, अनटचेबल्स पास्ट्स : रिलीजन, आइडेंटिटी, एण्ड पॉअर अमंग ए सैट्रल इण्डियन कम्युनिटी, 1780-1950, स्टेट यूनीवर्सिटी ऑव न्यू यॉर्क प्रैस, 1998.

पाई, सुधा, दलित एसर्सन एण्ड दि अनफिनिशड डेमोक्रेटिक रिवल्यूशन : बहुजन समाज पार्टी इन् उत्तर प्रदेश, नई दिल्ली सेज पब्लिकेशन्स, 2002.

मेण्डलसोन, अलीवर एण्ड बिब्जिअनी, मरिका, दि अनटचेबल्स : सबोर्डिनेशन, पॉवर्टी एण्ड दि स्टेट इन् मॉडर्न इण्डिया, कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज, 1998.

## 25.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

### बोध प्रश्न 1

- 1) दलित वे समूह हैं जिनसे अस्पृश्यता सहित सामाजिक भेदभाव किया जाता है। वे अधिकांशतः समाज के आर्थिक रूप से पिछड़े समूहों से संबंधित हैं। वे हमारे संविधान में प्रतिष्ठापित अनुसूचित जातियों से संबंध रखते हैं।
- 2) ये सामाजिक न्याय से संबंधित हैं, और उनमें से कुछ आते हैं – सभी प्रकार के मतभेद के खिलाफ विरोध-प्रदर्शन, आत्म-सम्मान के रक्षार्थ संघर्ष, पगारों का भुगतान, बलात् श्रम के विरुद्ध, भूमि-विवाद, आरक्षण नीति का क्रियान्वयन, डॉ० भीमराव अम्बेडकर के प्रति अनादर के विरुद्ध, वोट डालने जैसे लोकतांत्रिक अधिकारों से इंकार, इत्यादि।

## बोध प्रश्न 2

- 1) ये एकल जाति आंदोलन थे, यानी, दक्षिण में नाडारों, पुलयों और इजाइबों के; पश्चिम बंगाल में नामशूद्र के; पंजाब में 'आदि धर्म' आंदोलन व उत्तरप्रदेश में 'आदि हिन्दू' आंदोलन; और मध्यप्रदेश में 'सतनामी' आंदोलन। ये आंदोलन स्वयं-सुधार कर्मकाण्ड, दलितों की शिक्षा की उन्नति और राज्याधीन रोजगार में प्रवेश के प्रति वचनबद्ध थे।
- 2) जाति व अस्पृश्यता की समस्या तक पहुँचने के लिए गाँधीजी व अम्बेडकर के रास्ते अलग-अलग थे। गाँधीजी के अनुसार, अस्पृश्यता हिन्दूवाद का एक विकृत रूप है और इसको हिन्दुओं के नैतिक सुधार द्वारा ही मिटाया जा सकता है। अम्बेडकर का सोचना था कि अस्पृश्यता का वास्तविक कारण हिन्दू धर्म का स्वभाव ही है, और तर्क प्रस्तुत किया कि अस्पृश्यता व जातिवाद को हिन्दूवाद को निरस्त करके – हिन्दूवाद से अन्य अन्य धर्म, अधिमानतः बुद्ध धर्म, में धर्मान्तरण करके ही मिटाया जा सकता है।

## बोध प्रश्न 3

- 1) ये थे : दलितों के बीच, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के कार्यान्वयन, शैक्षणिक व राजनीतिक संस्थानों व सरकारी नौकरियों में आरक्षण जैसी राज्य-नीतियों का लाभ उठाने वालों का उदय। इस चरण में दलित कोई स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में नहीं उभरे; इसकी बजाए वे ही कांग्रेस जैसे बड़े राजनीतिक दलों द्वारा लामबंद किए गए। बहरहाल, उनमें से बहुसंख्यक उत्तर-प्रदेश व महाराष्ट्र में आर.पी.आई. के प्रभाव आ गए।
- 2) ये थे : अम्बेडकरवाद, मार्क्सवाद व "नीग्रो साहित्य" का प्रभाव, और एक विवाद जो महाराष्ट्र में दलित बुद्धिजीवियों द्वारा लिखे गए लेखों व कविताओं से और उच्च जातियों की प्रतिक्रिया से उठा।
- 3) इस काल ने देखा देश के विभिन्न भागों में दलित संगठनों के प्रचुरोद्भव द्वारा इंगित एक स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में दलितों का उद्भव। उत्तर भारत में 'बसपा', विशेषतः उत्तर प्रदेश में, एक स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति के रूप में उनके उदय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदाहरण है।